श्रीगुरुमाई के वचनों पर ध्यान

महाशिवरात्रि

ईशा सरदेसाई द्वारा लिखित

श्रीगुरुमाई की प्रार्थना

सिद्धयोग वैश्विक हॉल के जगमगाते नीलमण्डप के तले, गुरुमाई जी ने एक प्रार्थना की। वे हिन्दी में बोलीं; आपमें से जो लोग इस भाषा से परिचित हैं, उन्हें वे शब्द याद होंगे। और मुझे लगता है कि चाहे हम हिन्दी समझते हों या नहीं, हम सभी ने उनकी वाणी में शक्ति को झंकृत होते हुए महसूस किया। हम देख पा रहे थे कि कुछ महत्त्वपूर्ण घटित हो रहा है।

गुरुमाई जी ने जो कहा, वह यह था :

> अपनी आत्मा को शान्ति मिले, यही भगवान से प्रार्थना है। जब हम शान्ति का अनुभव करते हैं तो सब कुछ अच्छा लगता है। जब हम अपने आप में खुशी की अनुभूति करते हैं तो ऐसा लगता है कि भगवान का प्रसाद सारे जहान में है, सभी जगह में है।
>
> अपनी आत्मा को शान्ति मिले, ऐसी प्रार्थना भगवान से। जब हम शान्त होते हैं तो हम दूसरों के साथ खुशी से जीवन बिताते हैं। जब अन्तर में कुछ न कुछ होता है, तो बाहर हम बवण्डर मचाते हैं।
>
> अपनी आत्मा को शान्ति मिले, ऐसी प्रार्थना भगवान से।

"अपनी आत्मा को शान्ति मिले, ऐसी प्रार्थना भगवान से।"—हर बार, जब गुरुमाई जी ने इस पंक्ति को दोहराया, मुझे ऐसा लगा जैसे उनके संकल्प को अनन्तता की परतों में और भी गहराई से उकेरा जा रहा है। मुझे ऐसा भी महसूस हो रहा था कि यह प्रार्थना अपने आप को मेरी सत्ता के ताने-बाने में सिलती चली जा रही है। या फिर हो सकता है कि गुरुमाई जी के शब्द मेरे हृदय की सुप्त इच्छा को ही व्यक्त कर रहे थे।

तथापि, जैसे-जैसे मैं गुरुमाई जी की प्रार्थना के शब्दों को अपने अन्दर ग्रहण करती गई, उन शब्दों के विषय में मेरी समझ और विस्तृत होती गई। पहली बार जब गुरुमाई जी ने कहा, "अपनी आत्मा को शान्ति मिले," मैंने समझा कि उनकी प्रार्थना का आशय यह था कि हममें से हरेक व्यक्ति अपनी आत्मा की शान्ति की अनुभूति करे। जब गुरुमाई जी ने आगे की बात कही, तब मुझे तत्काल यह एहसास हुआ कि व्यक्तिगत तौर पर हम जिस शान्ति की अनुभूति कर सकते हैं और व्यापक अर्थ में शान्ति क्या है, वे इनके बीच के सम्बन्ध की बात कर रही हैं। वह शान्ति जो लोगों के बीच मौजूद है। वह शान्ति जो इस संसार के पशु और जीव-जन्तु महसूस करते हैं। स्वयं इस ग्रह की शान्तिमयता जो कि परमचेतना से युक्त है।

गुरुमाई जी जिस सम्बन्ध की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट कर रही थीं, उसमें कुछ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात है—आन्तरिक व बाह्य शान्ति के बीच का सम्बन्ध। संसार भले ही हममें से किसी के इर्द-गिर्द न घूमता हो, परन्तु हम घूमते हैं, बल्कि हम ही अपने संसार को वह बनाते हैं, जो वह है। प्रभाव डालने का हमारा दायरा बहुत व्यापक है। हम जिन चीज़ों को चुनते हैं, अपने अन्दर जिस वातावरण को पोषित करते हैं, और फिर जिस तरह का हमारा आपसी व्यवहार सामने आता है—यह सब कुछ बाहर की ओर प्रसरित होता है। और यह ख़ुद-ब-ख़ुद बढ़ता जाता है। इसका प्रभाव फैलता जाता है; इससे दर्जनों प्रतिक्रियाओं का एक सिलसिला शुरू हो जाता है। हम अगर चाहें तो वास्तव में मांगल्य को बढ़ा सकते हैं।

कभी-कभी, विश्वशान्ति की धारणा को समझ पाना कठिन हो सकता है, कम-से-कम मेरे लिए तो ऐसा ही है। यह ऐसी चीज़ है जिसकी मुझमें तीव्र इच्छा है, पर व्यवहारिक दृष्टिकोण से यह दुरूह लगती है, अप्राप्य लगती है—ख़ासकर ऐसी तनावपूर्ण और पेचीदा दुनिया में। गुरुमाई जी की प्रार्थना के बारे में जो बात मुझे सबसे अच्छी लगती है, वह यह कि उन्होंने इस लक्ष्य की प्राप्ति में हममें से हरेक को शामिल किया है। वे स्पष्ट कर देती हैं कि इसमें हम सबको अपनी-अपनी भूमिका निभानी है। विश्वशान्ति का लक्ष्य, हमेशा की ही तरह, आज भी उतना ही श्रेष्ठ है, परन्तु मेरा मानना है कि इसे प्राप्त करना भी सम्भव है, ख़ासकर तब, जब हम इसे पाने का *प्रयास* करें। यदि हम ध्यान से देखें तो हमें हर जगह शान्ति का प्रमाण यानी इसके होने का प्रमाण मिल सकता है, चाहे वह कितना भी अल्पकालिक क्यों न हो। अचानक मिली शान्तचित्तता के एक पल में, परोपकार के एक कार्य में, किसी विवाद को सुलझाने या आपसी सहमति तक पहुँचने के लिए किए गए किसी भी सच्चे प्रयास में, हम शान्ति को पा सकते हैं। इस तरह के उदाहरण हमें उम्मीद देते हैं। वे हमें याद दिलाते हैं कि शान्ति प्रायः किसी

छोटी-सी चीज़ से आरम्भ होती है, किसी ऐसी चीज़ से जिसके बारे में हमने सोचा भी न हो कि वह शान्ति को जन्म दे सकती है। सच कहें तो, शान्ति की इन 'छोटी-छोटी' अभिव्यक्तियों के संचित होने से ही और अपने व्यक्तिगत व सामूहिक बोध में इन्हें महत्त्व देकर ही व्यापक तौर पर शान्ति सम्भव हो पाती है।

इस बात को ध्यान में रखते हुए, आइए यह संकल्प लें कि हम प्रयास करें, विश्व में शान्ति लाने का, उसे स्पर्श करने का, उसकी अनुभूति करने का, उसके लिए कुछ करने का। प्रार्थना करने का कृत्य अपने आप में ही एक ठोस क़दम है जो हम उठा सकते हैं। 'श्रीगुरुमाई के वचनों पर ध्यान' के पिछले भाग में मैंने लिखा था कि सिद्धयोग पथ पर प्रार्थना करने में बहुत कुछ शामिल होता है। और अब इस बात में मैं यह जोड़ना चाहती हूँ कि खुद से परे किसी अन्य व्यक्ति या किसी वस्तु के लिए प्रार्थना *अर्पित करने* के लिए भी यही बात कही जा सकती है।

मुझे लगता है कि दूसरों के दुःख और उनकी दुर्दशा के प्रति आँख मूँद लेना, जितना हम सोचते हैं, उससे कहीं अधिक आसान है। हमारे चारों ओर, हर समय, जीवन और मृत्यु का चक्र चल रहा है। हर क्षण किसी का जन्म हो रहा है। हर क्षण कोई अपनी आख़िरी साँसें ले रहा है। एक चिड़िया अण्डे देती है और वे अण्डे घोंसले से नीचे गिर जाते हैं। हम टहलने जाते हैं और अपने फेफड़ों में ताज़ी हवा भर ही रहे होते हैं कि किसी कीड़े पर हमारा पैर पड़ जाता है। इसके और भी उदाहरण हैं जो अधिक नाटकीय हैं, युद्ध में या अन्य आपदाओं में जानें चली जाती हैं। ऐसी ख़बरों के प्रहार से हम अपने हृदय को बचाते हैं, हर नई मृत्यु का असर पहले वाली से कम होता है, बस इसीलिए क्योंकि हमें जीवित रहना है, हमें *आगे बढ़ते रहना* है। लेकिन, मैं यह सोचती हूँ कि आत्मरक्षण की इस परिश्रमभरी यात्रा के दौरान, कहीं हम जीवन के प्रति अपने विस्मयभाव को भी कुछ कम तो नहीं कर लेते हैं!

प्रार्थना करना और उन्हें अर्पित करना, ऐसी सोच के लिए एक अमोघ उपाय के रूप में कार्य करता है। इसके द्वारा हम शान्तिपूर्ण तरीक़े से, पर दृढ़ता से ऐसी सोच को अस्वीकार कर रहे होते हैं। दूसरों के लिए सच्चे मन से प्रार्थना करने हेतु यह आवश्यक है कि हम जीवन के मूल्य को सचमुच समझते हों और दूसरों के जीवन को भी उतना ही महत्त्वपूर्ण मानते हों जितना कि हम अपने जीवन को मानते हैं। जब हम विश्व की खुशहाली के लिए प्रार्थना करते हैं तो हम वास्तव में ऐसे विश्व की *परिकल्पना* कर रहे होते हैं जिसमें हम मात्र 'गुज़ारा' करने की कोशिश नहीं कर रहे होते, बल्कि उससे भी कहीं अधिक कर रहे होते हैं। हम अलग-थलग रहने के, संकीर्ण जीवनशैली के अपने जाने-पहचाने दायरे से बाहर निकल रहे होते हैं। हम समस्त सृष्टि व इसके सभी जीवों के साथ अपने परस्पर सम्बन्ध को पहचान रहे

होते हैं और मेरा मानना है कि जब हम ऐसा करते हैं तो हमें अपने हृदय में निहित कृतज्ञता के स्रोत में प्रवेश मिल जाता है। इस ग्रह पर हमारा अस्तित्व किसी और के अस्तित्व से अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं है। हम सब समान रूप से सौभाग्यशाली हैं कि हम यहाँ हैं, तो दूसरों के साथ मिलकर जब हम प्रगति करते हैं तो उसी के साथ-साथ हम स्वयं अपनी उन्नति के लिए सबसे अच्छा रास्ता, सबसे अच्छा तरीक़ा क्यों न ढूँढ़ें?

मैंने गुरुमाई जी को यह सिखाते हुए सुना है कि एक 'प्रार्थनाशील हृदय' बनाए रखना कितना महत्त्वपूर्ण है। मुझे इसका यह अर्थ समझ में आता है कि भले ही हम सोच-विचारकर, सजगता से, अपनी प्रार्थना को शब्दों में व्यक्त नहीं कर रहे हों, फिर भी हम प्रार्थनाशील होने के एक अन्तर-भाव को विकसित कर सकते हैं। हम अपने आस-पास के संसार को ऐसे नज़रिए से देख सकते हैं और संसार में इस तरह रह सकते हैं जिससे हमारे अन्दर प्रार्थनाशीलता का भाव बना रह सके। फिर, जब वास्तव में प्रार्थना अर्पित करने का समय आएगा तो हम इसके लिए तैयार होंगे। प्रार्थना करने के लिए जो समानूभूति का भाव अपेक्षित है, हृदय की जो संवेदनशीलता या कोमलता आवश्यक है, उसे खोजने के लिए हमें अपने अन्तर में बहुत गहरे उतरना नहीं पड़ेगा।

गुरुमाई जी ने हमें ऐसा करने का एक तरीक़ा यह सिखाया है कि हम जिस भाषा का प्रयोग करते हैं, उस पर ध्यान दें। इसमें हमारे मन के विचार व दूसरों से कहे गए हमारे शब्द, दोनों ही शामिल हैं। हम जिन लोगों से मिलते हैं, उनका वर्णन हम कैसे करते हैं? हमारे मन में कौन-से शब्द आते हैं? उनके व्यक्तित्व को, उनके आचरण को अभिस्वीकृति देने के लिए हम किन शब्दों का प्रयोग करते हैं? अपनी भाषा के चयन द्वारा हम मानवता के बारे में किन सिद्धान्तों की पुष्टि करते हैं?

चूँकि मैं एक मराठी भाषी परिवार में पली-बढ़ी हूँ, इसलिए गुरुमाई जी ने मुझे बताया है कि मराठी भाषा का उनका एक प्रिय शब्द है 'चांगला'। बाबा मुक्तानन्द, गुरुदेव सिद्धपीठ में आने वाले भक्तों से बात करते हुए या उनके बारे में चर्चा करते समय अकसर इस शब्द का प्रयोग किया करते थे—विशेषकर उन भक्तों के लिए जो मूलरूप से महाराष्ट्र के रहने वाले थे। यह मराठी भाषा का एक सुन्दर शब्द है। यह ऐसा शब्द भी है जिसका प्रयोग लोग हर समय करते रहते हैं, इस तरह यह शब्द अर्थ की दृष्टि से कितना समृद्ध है, इस बात की ओर मेरा ध्यान बार-बार जाता है, मानो मुझे इसकी गहराई की याद दिलाई जा रही हो। 'चांगला' का शाब्दिक अर्थ है, 'अच्छा'। तथापि इसके सार में और भी बहुत कुछ समाहित है। 'चांगला' या 'चांगली' व्यक्ति का व्यक्तित्व और जीवन के प्रति उसका दृष्टिकोण बहुत अच्छा होता है। ऐसे लोग सत्यवादी, ईमानदार, सदाचारी, नेक-नीयत होते हैं—वे तो पूरी तरह *'अच्छे'*

होते हैं। किसी का वर्णन करने के लिए 'चांगला' का प्रयोग करने का अर्थ है, उनमें जो सर्वश्रेष्ठ है, उसे देखना। इसका तात्पर्य है, उनकी अन्तर्जात अच्छाई को पहचानना, उसका सम्मान करना।

अन्य भाषाओं में भी ऐसे ही शब्द पाए जा सकते हैं। जापानी भाषा में, जो व्यक्ति नेकदिल होता है, जिसका स्वभाव सौम्य व सच्चा होता है, उसे 'ज़ैन्निन' कहा जाता है। स्पैनिश भाषा मैं ऐसे व्यक्ति को 'बोंदादोसो' कहते हैं यानी अच्छा व दयालु। इतालवी में यह व्यक्ति होता है 'बूऑनो' यानी ईमानदार, सद्गुणी, सहृदय या नरम दिल। रूसी में 'दौब्रै', अच्छा, दयालु, सद्भावना रखने वाला। और फ्रेंच में, ऐसे व्यक्ति को कहते हैं 'बों'; वे दूसरों के साथ अच्छा व्यवहार करते हैं और दूसरों का भला चाहते हैं, वे करुणाशील व उदार होते हैं।

मैं यह सब इसलिए बता रही हूँ, ताकि मेरे लिए और हम सबके लिए इस बात की पुष्टि हो सके कि 'एक प्रार्थनाशील हृदय' का पोषण करने के लिए जिन साधनों की आवश्यकता होती है, वे साधन हमारे पास हैं। हमारे शब्द, हमारे संसार की रचना करते हैं। स्पष्ट रूप से कहूँ तो हमें अपनी आँखों पर पट्टी नहीं बाँधनी है; दूसरों में अच्छाई को देखने का अर्थ न तो झूठ को अनदेखा करना है और न ही ग़लत कामों को स्वीकारना। परन्तु दूसरों में 'सचमुच' जो अच्छाई है, उसे खोजने व उसकी सराहना करने से हम सम्पूर्ण मानवता में निहित अच्छाई में अपने विश्वास को और भी मज़बूत बनाते हैं। और यदि हम अपने इस विश्वास को सुदृढ़ बनाए रखने के लिए जो कर सकते हैं, वह नहीं करते तो हम प्रार्थना किसके लिए और क्यों कर रहे हैं?

यह भी एक कारण है, विशेषकर महाशिवरात्रि के सन्दर्भ में, कि मुझे भगवान शिव के अनेक नामों के बारे में सीखना लाभदायक लगता है। जैसा कि हम जानते हैं, भगवान शिव हमारी अन्तरात्मा से भिन्न नहीं हैं। वे सभी में विद्यमान आत्मा हैं। इसलिए जब हम उन्हें 'शिव' कहते हैं—जिसका शाब्दिक अर्थ है, 'वे जो मंगलमय हैं, अच्छाई की मूरत हैं'—तो हम स्वयं अपनी अच्छाई और दूसरों की अच्छाई को याद कर रहे होते हैं। जब हम 'गुणोत्तम' यानी 'परमोत्तम गुणों वाले' कहकर उन्हें सम्बोधित करते हैं, तब हम स्वयं में व अपने आस-पास के लोगों में इसी पुण्यशीलता को पहचान रहे होते हैं। और जब हम उन्हें 'शंकर' अर्थात् 'कृपालु, सुखदाता' कहते हैं तो हम इस बात को स्वीकार कर रहे होते हैं कि हम सभी में दयालु और हितैषी होने तथा अपने आस-पास अच्छाई फैलाने की क्षमता है।

महाशिवरात्रि के सत्संग के दौरान गुरुमाई जी द्वारा की गई प्रार्थना के बारे में ये मेरे कुछ प्रारम्भिक विचार हैं। अब मैं यह जानना चाहती हूँ कि गुरुमाई जी की प्रार्थना का आपके लिए क्या अर्थ है। जब

आप गुरुमाई जी की प्रार्थना के शब्द सुनते हैं तो आपके मन में क्या आता है? आपके हृदय में क्या उभरता है? आपके अन्दर अच्छाई है और आपके अन्दर वह क्षमता भी है जिससे आप दूसरों के जीवन में बदलाव ला सकते हैं, तो आप इन दोनों के बीच के सम्बन्ध को समझकर इसका सकारात्मक उपयोग करने के लिए क्या प्रयास कर रहे हैं? सकारात्मक प्रभाव डालने के लिए आप अपनी अच्छाई का उपयोग कैसे करेंगे, भले ही आपको अपना प्रभाव अत्यन्त सूक्ष्म लगे या अत्यधिक विशाल?

© २०२६ एस. वाय. डी. ए. फ़ाउन्डेशन®। सर्वाधिकार सुरक्षित।